10. 1857 का विप्लव

अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष के कारण

19वीं सदी के पूर्वार्ध में भारतीय राजनीतिक ढांचा परिवर्तनमय था, किंतु अधिकांश भारतीय राज्य सामंतीय प्रणाली पर गठित थे। विभिन्न राज्यों की पराजय के पश्चात् भी सामान्य जनसाधारण सामंती नेतृत्व को प्रायः स्वीकार किए हुए था। अंग्रेजों द्वारा स्थापित नई व्यवस्था के विरुद्ध असंतोष व्यक्त करने का एकमात्र साधन सैनिक विद्रोह था। अंग्रेज साम्राज्यवादी इतिहासकारों ने इन विद्रोहों को सामंती असंतोष की अभिव्यक्ति कहकर उनके महत्त्व को कम करने का प्रयास किया है। उक्त विद्रोहों के पीछे सामंती असंतोष तो होता ही था लेकिन किसी भी समाज में सामाजिक असंतोष की अभिव्यक्ति प्रचलित माध्यम से ही हो सकती थी। यह माध्यम सामंत और सेना ही थे।

अंग्रेजी साम्राज्य विस्तार भारतवासियों के लिए विभिन्न प्रकार की आपत्तियों तथा असुविधाओं का जनक बना। प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में अंग्रेजी नीति ने पुरानी प्रचलित व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया। विभिन्न वर्गों के जीवन-निर्वाह के लिए अंग्रेजी साम्राज्य विनाशकारी सिद्ध हुआ। असंतोष की व्यापकता के फलस्वरूप ही 1857 में भारत के विभिन्न वर्गों ने अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया। इस विद्रोह के मुख्य कारण निम्नलिखित थे।

ईसाई मिशनरियों और अंग्रेजी तिरस्कार दृष्टिकोण से असंतोष : आर्थिक और राजनीतिक शोषण से भी अधिक व्यापक असंतोष अंग्रेजी अधिकारियों द्वारा भारतीयों के प्रति तिरस्कारपूर्ण दृष्टिकोण तथा ईसाई मिशनरियों के पक्षपातपूर्ण समर्थन से उत्पन्न हुआ। अंग्रेज अपनी जातीय उच्चता में विश्वास रखते थे और प्रत्येक भारतीय को उसकी हीनता से अवगत कराना चाहते थे। राजा राममोहन राय, सर सैयद अहमद खां और अन्य सम्मानित भारतीय नेताओं को अपने जीवन में अंग्रेजों के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार का अनुभव करना पड़ा। सामाचार-पत्रों में विभिन्न ऐसी घटनाओं का वर्णन होता रहता था जिनमें अंग्रेजों के भारतीयों पर घातक प्रहार करने पर भी न्यायालय द्वारा उन्हें निर्दोष घोषित कर दिया जाता था। इससे भी अधिक असंतोष अंग्रेज अधिकारियों द्वारा पादरियों (ईसाई मिशनरियों) के समर्थन से पैदा हुआ। 19वीं सदी के पूर्वार्ध में ईसाई मिशनरियों की कार्यवाही से व्यापक असंतोष फैला हुआ हुआ था। सर सैयद ने अपनी पुस्तक 'असबाब बगावत-ए-हिन्द' (भारतीय विप्लव के कारण) में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। मिशनरी स्कूलों में पढ़े भारतीय विद्यार्थियों द्वारा भारतीय धर्मों की खुली आलोचना से यह विश्वास बड़ी सरलता से फैलाया गया कि मिशनरी स्कूल भारतवासियों को ईसाई बनाने के साधन मात्र थे। बहुत से अंग्रेज अधिकारी (मैकाले की भांति) इस विचार का स्पष्ट समर्थन करते

Scanned with CamScanner

थे। सरकारी स्कूलों में बाइबिल की शिक्षा अनिवार्य थी। विद्यार्थियों को हिंदू धर्म की आलोचना तथा ईसाई धर्म की सर्वोच्चता बताई जाती थी। अकाल पीड़ितों, बंदियों, विधवाओं, अनाथ बालकों को बलपूर्वक ईसाई बना लिया जाता था। बहुत से अधिकारी भी मिशनरियों के इस तर्क का समर्थन करते थे कि जैसे भारत में राजनीतिक एकता स्थापित हुई उसी प्रकार एक ही धर्म की प्रधानता भी स्थापित हो जानी चाहिए। 1850-1856 ई० के समाज सुधार अधिनियम हिंदू समाज पर खुला प्रहार थे। रेलों का निर्माण भी उस दूषित वातावरण में हिंदू समाज पर एक आक्षेप समझा गया। सर सैयद अहमद के अनुसार हर बड़ा-छोटा व्यक्ति यह विश्वास करता था कि सरकार वास्तव में हिंदू तथा मुसलमान जनता को ईसाई बनाना चाहती थी। अंग्रेज अधिकारियों ने इस व्यापक संदेह को दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। भारतवासियों को अपने धर्म के संबंध में अंग्रेजी नीति के प्रति भारी संदेह था। यह संदेह ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों का ही परिणाम था। इसी संदेह के वातावरण में चरबी वाले कारतूस की घटना हुई जिससे विद्रोह भड़क उठा।

आर्थिक शोषण : 18वीं सदी के उत्तरार्ध में कुटीर उद्योगों का विनाश आरंभ हो चुका था किंतु 19वीं सदी के आरंभ में भारत का आर्थिक शोषण स्पष्ट होने लगा था। मुक्त व्यापार, अंग्रेजी व्यापारियों के भारत आने और इंग्लैंड के निर्मित वस्त्रों को अधिकाधिक मात्रा में भारत में बेचने से यहां के कुटीर उद्योग प्रायः लुप्त ही हो गए। अंग्रेजी प्रशासन से निर्धनता बड़ी तेजी से बढ़ रही थी। अंग्रेजों ने प्रशासनिक अधिकार से लाभ उठाकर भारतीय व्यापार, वाणिज्य और कुटीर उद्योगों को अपने नियंत्रण में कर लिया। प्रतिवर्ष जितना अतिरिक्त निर्यात व्यापार (आयात से अधिक) होता था वह धन निष्कासन के समान था। अंग्रेजी राज्य के आर्थिक शोषण से पुराना जमींदार वर्ग भी समाप्त हो गया। स्थायी और रैयतवाड़ी प्रथा के कृषकों पर अत्यन्त हानिकारक प्रभाव हुए। अवध में ताल्लुकेदारों के समस्त अधिकार 1856 ई० के भूमि प्रबन्ध से समाप्त कर दिए गए।

अंग्रेजों ने पुराने समय से चली आ रही करमुक्त भूमि को पुनः अपने नियंत्रण में लेने का निर्णय भी लिया। इसके लिए विशेष आदेश (ला खिराज रेगूलेशंस) प्रसारित किए गए। शिक्षा, ज्ञान अथवा परमार्थ के लिए मिली हुई करमुक्त जागीरों के स्वामियों से भूमि के स्वामित्व के पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। जो लोग ऐसा करने में असमर्थ रहे उनकी भूमि छीन ली गई। इस निर्णय से बहुत से सम्मानित व्यक्तियों को जीविका की तलाश में मारे-मारे फिरना पड़ा। यह नीति बैंटिक के समय में आरंभ हो चुकी थी लेकिन डलहौज़ी के समय में इस नीति को बड़ी कठोरता से लागू किया गया। 1852 ई० में इनाम आयोग ने दक्षिणी भारत में हजारों जमींदारों की भूमि छीन ली। इससे भारी असंतोष पैदा हुआ।

अंग्रेजी आर्थिक नीतियों से कृषक, शिल्पी, जमींदार, व्यापारी सभी वर्ग दुःखी थे, केवल वे लोग प्रसन्न थे जो अंग्रेजी नीतियों के फलस्वरूप समाज में नया स्थान प्राप्त करने के इच्छुक थे। सरकारी नौकरियों के इच्छुक अंग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवक अथवा बंगाल का जमींदार वर्ग या वकीलों को छोड़कर समाज के अन्य बहुसंख्यक वर्ग अंग्रेजी साम्राज्य की नीतियों से दुःखी थे।

राजनीतिक तथा प्रशासकीय कारण : अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से विभिन्न भारतीय नरेशों, राजवंशों का अन्त किया गया। इसका प्रभाव केवल कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि उन पर आश्रित सामंतों, सैनिकों, शिल्पियों तथा अन्य वर्गों पर भी पड़ा। डलहौजी की राज्य अपहरण नीति से यह संभावना भी [illegible]

किसी न किसी बहाने से अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया जाएगा। अवध से अधिक अंग्रेजों का समर्थक तथा आज्ञाकारी राज्य अन्य कोई भी नहीं था। सतारा से पुराने अथवा नागपुर से अधिक प्रतिष्ठित राजघराने कम ही थे। जब इन राज्यों को ही अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया गया तब शेष राज्यों का अस्तित्त्व कभी भी समाप्त किया जा सकता था। केवल अपदस्थ राज्यों में ही नहीं बल्कि शेष राज्यों में भी यह भय उत्पन्न हो गया कि बढ़ते हुए अंग्रेजी साम्राज्यवाद के सामने उनके हित सुरक्षित नहीं थे।

अंग्रेजी साम्राज्य के प्रशासकीय परिवर्तनों ने यहां प्रचलित व्यवस्था को झकझोर दिया। कागज पर देखने में भले ही ये परिवर्तन सुधार दिखाई देते हों लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से अत्यंत अलोकप्रिय तथा कष्टप्रद परिवर्तन थे। इन परिवर्तनों में दो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : न्याय प्रशासन तथा भूराजस्व प्रबंध। अंग्रेजी न्याय प्रशासन एक भिन्न प्रशासनिक व्यवस्था का प्रतीक था। विधि प्रणाली और संपत्ति अधिकार पूरी तरह से नए थे। सामान्य भारतीय उनसे पूरी तरह अपरिचित था। न्याय प्रणाली में अत्यधिक धन तथा समय नष्ट होता और फिर भी निर्णय अनिश्चित था। भूराजस्व प्रणाली को नियमित बनाने मे राजस्व का बोझ कृषकों पर अधिक बढ़ गया था। प्राय: प्रत्येक भूराजस्व प्रणाली–स्थायी, रैयतवाड़ी, महलवाड़ी–का एक ही परिणाम था कि कृषकों से पहले की अपेक्षा दुगुने से भी अधिक लगान लिया गया।

प्रशासन में अंग्रेजों ने प्रजातीय भेदभाव की नीति अपना रखी थी। कार्नवालिस ने भारतवासियों को उच्च पदों से वंचित करके उनके प्रति अविश्वास की मनोवृत्ति को बढ़ावा दिया। यद्यपि 1833 ई० के चार्टर एक्ट में जाति अथवा रंग के आधार पर भेद की नीति को समाप्त करने की घोषणा की गई थी लेकिन यह घोषणा मात्र ही रह गई। राजा राममोहन राय के लड़के को उच्च पद देना चाहकर भी बोर्ड ऑफ कंट्रोल असमर्थ रहा। शिक्षित तथा सम्मानित भारतीयों के प्रति भी अंग्रेजों का दृष्टिकोण अहंकार भरा हुआ होता था। दीनबन्धु मित्र द्वारा रचित 'नील दर्पण' में नीलाहों के दुर्व्यवहार का अच्छा चित्रण किया गया। विभिन्न तात्कालिक समाचारपत्रों में अंग्रेजों के अमानवीय व्यवहार का वर्णन होता था। प्रशासन में व्यक्तिगत संपर्क का पूर्ण अभाव था। अंग्रेज अधिकारी अपने आप को पूरी तरह से अलग–थलग रखते थे, इससे भी उनमें और भारतीयों के मध्य एक ऊंची दीवार खड़ी हो जाती थी।

सेना में असन्तोष : भारत में अंग्रेजी सेना के दो भाग होते थे। एक भाग में अफसर तथा सैनिक, दोनों ही अंग्रेज, दूसरे भाग में अंग्रेज अफसर तथा भारतीय सैनिक होते थे। बंगाल, बंबई और मद्रास प्रांतों की अलग–अलग सेनाएं थीं। बंगाल सेनाध्यक्ष कंपनी की समस्त सेना का अध्यक्ष माना जाता था। बंगाल सेना में अधिकांश सैनिक उत्तरी भारत (मुख्यत: आधुनिक उत्तर प्रदेश) से भर्ती होते थे। इस सेना में बंगाली सैनिक बहुत कम होते थे। हिंदू सैनिकों में अधिकांश ऊंची जातियों के ब्राह्मण, राजपूत और जाट होते थे। बंबई और मद्रास की सेनाओं में मोपला तथा तमिल और तेलगू क्षेत्र के सिपाही (जिन्हें तिलंगा कहते थे) होते थे।

भारतीय सिपाहियों के लिए उच्च स्थान प्राप्त करने के अवसर बहुत कम थे। सेना में इनका प्रवेश यूरोपीय अफसरों को रिश्वत दिए बिना कम होता था। उनका सामान्य वेतन सात या आठ रुपए मासिक होता था। इसमें उन्हें अपनी वर्दी तथा खाने का खर्च देना पड़ता था जिसे वे उधार लेकर देते थे। वेतन के दिन उन्हें सामान्यत: एक रुपया या डेढ़ रुपए से अधिक नहीं मिलता था। पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर होती थी और तब भी नौ रुपए मासिक से अधिक उन्हें नहीं मिलता था। अंग्रेजी सैनिकों को उनसे कई गुना अधिक वेतन मिलता था। पूरी भारतीय सेना में

Scanned with CamScanner

अंग्रेजी सैनिकों की संख्या एक छटे भाग से कम थी। कुल सैनिक खर्च का आधे से अधिक अंग्रेजों पर ही किया जाता था। मामूली कार्यों पर भारतीय सैनिकों को ही लगाया जाता और लूट के समय अधिकांश माल अंग्रेजों में ही बांटा जाता था। सेना का गठन ही इस प्रकार से किया हुआ था कि इन दोनों भागों में बहुत मनमुटाव था। हिंदुस्तानी सैनिकों को शिकायत के पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध रहते थे।

1806 ई० से 1856 ई० तक विभिन्न अवसरों पर भारतीय सैनिकों ने अंग्रेजों के इस दुर्व्यवहार के विरुद्ध विद्रोह किए। 1806 ई० में वैलोर में मद्रास सेना में एक विशेष प्रकार की पगड़ी पहनने, दाढ़ी मुंड़वाने तथा तिलक न लगाने के आदेशों के विरुद्ध विद्रोह हुआ। 1824 ई० में बैरकपुर की छावनी में दोहरे भत्ते के बिना रंगून जाने के प्रश्न पर उपद्रव हुआ जिसमें सैकड़ों सैनिक मारे गए। भारतीय सैनिकों को आश्वासन देकर भी भत्ता न दिए जाने की घटनाएं सामान्य थीं। 1830 ई० में शोलापुर में, 1842 ई० में हैदराबाद में 1842-43 ई० में सिंध में भेजी गई सेनाओं में, विद्रोह हुए। इन सब विद्रोहों को कठोरता से दबा तो दिया गया लेकिन सैनिकों में अंग्रेज अधिकारियों द्वारा दिए गए आश्वासनों के प्रति अविश्वास पैदा हो गया। यही कारण था कि 1857 ई० में अंग्रेज सेना अधिकारियों द्वारा दिए गए आश्वासन सिपाहियों को शांत करने में पूरी तरह असमर्थ रहे।

बंगाल सेना को भारत के बाहर लड़ने के लिए भेजना भी असंतोष पैदा करने में सहायक हुआ। भारत से बाहर जाने पर उनके जाति से बहिष्कृत होने की आशंका रहती थी। उस समय सेना का सामान्य जनता से दैनिक जीवन में संपर्क बना रहता था इसलिए ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों के संबंध में जनता की प्रतिक्रिया का भी उन्हें पूरा ज्ञान था। सेना में अधिकारियों के प्रति अविश्वास पहले से ही व्याप्त था। ऐसे वातावरण में चरबी वाले कारतूस की घटना हुई। 1 जनवरी, 1857 ई० को एनफील्ड राइफल का प्रयोग अंग्रेज सेना अधिकारियों द्वारा आरंभ किया गया। इस राइफल में चरबी लगे विशेष प्रकार के छर्रे वाले कारतूस प्रयोग किए जाते थे। यह छर्रे एक विशेष चिकनाई (जो गाय और सूअर की चर्बी से तैयार होती थी) में लपेटकर कारतूस (गोली कोश) में रखे रहते थे। उन्हें मुंह से काटकर राइफल में भरा जाता था।[1] इन कारतूसों का प्रयोग आरंभ हो जाने के पश्चात् दमदम अस्त्रागार में एक खलासी ने ब्राह्मण के लोटे से पानी पीने का आग्रह किया। ब्राह्मण को अपने जाति से पतित हो जाने का भय था। उसके मना करने पर खलासी ने उसे व्यंग्य किया कि उसकी जाति नए कारतूसों के प्रयोग के पश्चात् समाप्त हो जाएगी। इस घटना का अंग्रेज अधिकारियों ने वर्णन किया है।[2]

सिपाहियों के आपत्ति करने पर सेनाध्यक्ष एनसन ने मार्च, 1857 ई० में गोलाबारी अभ्यास को कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया लेकिन लार्ड कैनिंग ने अप्रैल में आदेश दिए कि गोलाबारी अभ्यास चलता रहे और जो सिपाही इस अभ्यास से मना करे उसे सैनिक रीति से दंड दिया जाए। कुछ अन्य स्थानों पर चरबी की अपेक्षा उस कारतूस में लगे विशेष प्रकार के चमकीले कागज पर आपत्ति उठाई गई। इन आपत्तियों की ओर अंग्रेजी अधिकारियों का दृष्टिकोण अनुशासनिक होता था। वे भारतीय सैनिकों को निरस्त्र करना ही पर्याप्त समझते थे। इस नीति से असन्तोष कम होने के स्थान पर शीघ्रता से फैला।

1857 के पूर्व अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह

विद्रोह संचालन सामान्यत: उस व्यक्ति द्वारा नहीं किया जा सकता जो अपने हितों की दूर तक

Scanned with CamScanner

कल्पना अथवा होने वाले लाभ और हानि का मूल्यांकन करता रहता हो। यह नेतृत्व केवल उस व्यक्ति अथवा व्यक्तियों द्वारा ही होता है जो अपमान और आघात का बदला लेने के लिए किसी भी अवसर पर साहस एकत्र करके विद्रोह का झंडा खड़ा कर देते हैं। अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न अवसरों पर पीड़ित व्यक्तियों ने विद्रोह किए। इन विद्रोहों का नेतृत्व स्वाभाविक रूप से उन्हीं लोगों द्वारा किया गया जिनके हितों पर अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा कुठाराघात किया गया था। उनके अनुयाई ही इस विद्रोह में उनका समर्थन करते थे। यह जानते हुए भी कि वे अंग्रेजी साम्राज्य की अपेक्षा कम शक्तिशाली थे उन्हें विद्रोह करने में संकोच नहीं हुआ। उनके निजी स्वार्थ केवल निजी ही नहीं होते थे। वे इस अर्थ में सार्वजनिक भी थे कि उस राज्य के विभिन्न वर्ग अंग्रेजी नीति से किसी न किसी रूप में पीड़ित थे। उनका निज एक प्रकार से सार्वजनिक स्वार्थ में परिवर्तित हो गया था।

भारतीय इतिहास में भी 19वीं सदी के पूर्वार्ध में विभिन्न विद्रोह हुए। ये विद्रोह कई बार अंग्रेजों की साम्राज्य विस्तार नीति की असफलता का लाभ उठा लिया करते थे। 1818-20 ई० के मध्य पश्चिमी घाट के भीलों के विद्रोह हुए। इन भीलों का प्रधान गढ़ खानदेश था। इसी समय राजस्थान के मेरों ने भी विद्रोह किया। मेरों के विद्रोह को कुचलने में अंग्रेजों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मेवाड़ और मारवाड़ के शासकों का समर्थन मिल जाने तथा मेरों को सेना में भर्ती के आश्वासन के पश्चात् ही अंग्रेजों को उस विद्रोह से मुक्ति मिली। कच्छ के शासक ने अवसर को उचित समझकर विद्रोह किया। प्रथम बर्मा युद्ध (1824-26 ई०) की असफलता से कच्छ के सामंतों ने भी विद्रोह में भाग लिया। इसी तरह सहारनपुर के गूजरों ने, दिल्ली के निकट जाटों, मेवातियों और भाटियों ने विद्रोह किए। इन विद्रोहों से लाभ उठाकर बुंदेलखण्ड में नाना पंडित नामक जागीरदार ने, गुजरात में कोलियों ने, महाराष्ट्र में किट्टूर के सरदार ने बगावत कर दी। विभिन्न देशी राज्यों में उत्तराधिकार के प्रश्न पर अंग्रेजी हस्तक्षेप के फलस्वरूप विद्रोह हुए। सतारा के लोकप्रिय राजा प्रतापसिंह को गद्दी से हटाने पर राज्य में 1840-41 ई० में व्यापक उपद्रव हुए। अंग्रेजी भूराजस्व प्रणाली के विरुद्ध भी राज्यों में विद्रोह हुए। उदाहरणार्थ: 1844 ई० में महाराष्ट्र के कोल्हापुर और संवंतवाड़ी राज्यों में, 1830-32 ई० में विशाखापत्तनम में, 1835-37 ई० में गंजम (उत्तरी सरकार) में, 1838-47 ई० में बंगाल के जमींदारों के अत्याचारों के विरुद्ध फराइजी आंदोलन हुआ। इसी प्रकार के विभिन्न विद्रोहों और उपद्रवों का विस्तृत वर्णन प्रो० चौधरी ने अपनी पुस्तक में किया है।[3]

अंग्रेज इतिहासकारों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ये सब विद्रोह जमींदारों अथवा सामंतों और उनके अनुयाइयों द्वारा अपने स्वार्थों के लिए ही किए गए थे तथा उन सामंतों का अपनी कृषक प्रजा पर इतना अधिक प्रभाव था कि वे उनके कहने में आकर विद्रोह कर देते थे। यह तर्क देखने में ठीक प्रतीत होता है किंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। बहुत से स्थानों पर अंग्रेजी शासकों के अन्यायपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध कृषकों अथवा जनता ने जमींदारों को विद्रोह करने पर बाध्य किया। अंग्रेजी प्रशासकीय नीतियों के फलस्वरूप गांव के मुखिया चौकीदारों के कर्तव्य प्राय: अंग्रेज अधिकारियों ने लेकर भारतीय नरेशों की सेना को भंग करके सामान्य कृषकों अथवा जनता के लिए बचे हुए जीविका के अवसर भी समाप्त कर दिए। अंग्रेजी नीति ने पूर्व प्रचलित संस्थाओं को समाप्त कर दिया जिससे प्रशासन साधारण प्रजा से अलग होता गया। प्रशासन और प्रजा के मध्य सहानुभूति प्राय: समाप्त होती दिखाई दी। अंग्रेजी राज्य के पराया (विदेशी) होने

Scanned with CamScanner

का परिणाम यह हुआ कि किसी भी नेता के विद्रोह करने पर जनता का अधिकांश भाग अंग्रेजों के विरुद्ध उसका समर्थन करने को तैयार हो जाता था।

1857 के विप्लव के लिए उत्तरदायी तात्कालिक घटनाएं

जनवरी, 1857 ई० से चरबी वाले कारतूसों की खबर बंगाल सेना में फैलनी आरंभ हो गई। यह खबर दमदम के तोपखाने में काम करने वाले एक खलासी ने एक ब्राह्मण सिपाही को व्यंगात्मक रूप से दी थी। इससे बैरकपुर (कलकत्ता से 5 मील दूर) में बंगाल सेना की टुकड़ी (34 एन० आई०) में सबसे अधिक अशांति फैली। इसी टुकड़ी की कुछ कंपनियां फरवरी में बरहामपुर (कलकत्ता से 120 मील दूर) पहुंची और 26 फ़रवरी, 1857 ई० को बरहामपुर में 19 एन० आई० के सिपाहियों ने चरबी लगे कारतूसों के प्रयोग करने से मना कर दिया। सिपाहियों के बाद में आज्ञापालन पर भी कैनिंग ने उस पूरी टुकड़ी को भंग करने के आदेश दिए। इससे 34 एन० आई० के सैनिकों में असंतोष बढ़ा और मंगल पांडे नामक सैनिक ने अकेले अनुशासन भंग करने का निश्चय किया। 29 मार्च, 1857 ई० को उसने अपनी सेना के दो अंग्रेज अधिकारियों को घायल कर दिया। लेकिन उस समय अन्य सैनिकों ने उसका साथ नहीं दिया। तब भी अंग्रेजों ने 34 एन० आई० को भंग कर दिया। इस प्रकार अप्रैल के आरंभ में इन दोनों सेनाओं के सिपाहियों ने अवध में अपने घर पहुंचकर चरबी वाले कारतूसों की बात फैलाई। इसी प्रकार की घटनाएं अंबाला में हुई थीं। 2 मई को ऐसी ही एक घटना लखनऊ में 7वीं अवध रेजिमेंट के साथ हुई जिसने कारतूसों का प्रयोग करने से मना कर दिया। अवध के चीफ कमिश्नर हेनरी लारेंस ने अगले दिन इस रेजिमेंट को भंग कर दिया।

इन घटनाओं में षड्यंत्र अथवा संगठन का अभाव दिखाई पड़ता है। लेकिन इसी समय उत्तरी भारत में चपातियां एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजी गईं। इन चपातियों के साथ किसी निश्चित सूचना का ज्ञान उपलब्ध नहीं है। कुछ लोग इसको अंग्रेजी सरकार द्वारा आरंभ किया हुआ मानते थे, दूसरे लोग इसे किसी आने वाली विपत्ति से बचने का उपाय समझते थे। चपातियों के वितरण के संबंध में अधिक से अधिक यह कहा गया है कि नाना (विद्रोह के एक नेता) के गुरु ने नाना को बताया था कि जितने क्षेत्र में ये चपातियां पहुंचाई जा सकेंगी वह उसके पक्ष हो में जाएगा।

चर्बी लगे कारतूसों की खबर मेरठ भी शीघ्र ही पहुंच गई। अप्रैल, 1857 ई० में तीसरी लाइट कैवेलरी के अधिकारी कारमाइकेल स्मिथ ने स्थिति को बिगाड़ने में बहुत सहायता की। वह अत्यंत अहंमन्य अधिकारी था। सेना में व्यापक असंतोष का पता होते हुए भी उसने 24 अप्रैल को 3 एल० सी० की परेड का आदेश दिया। 90 घुड़सवारों में से 85 ने नए कारतूसों को लेने से मना कर दिया। आज्ञा उल्लंघन के अपराध में उन 85 सवारों को कोर्ट मार्शल द्वारा 5 वर्ष का कारावास दे दिया गया और 9 मई को मेरठ छावनी के सैनिकों के समक्ष अपमानित करके उन्हें सामान्य अपराधियों के कपड़े तथा बेड़ियां पहना दी गईं। उन्होंने अन्य सैनिक साथियों को इस अपमान का बदला लेने के लिए चुनौती दी। उसी दिन रात्रि के समय अंग्रेज अधिकारियों को इस अफवाह का ज्ञान हो गया कि अगले दिन (10 मई, 1857 ई०) विद्रोह होने वाला था। 10 मई को इतवार का दिन था और अंग्रेजों की सायंकाल की सामूहिक प्रार्थना का समय 6.30 बजे था। विद्रोह सायं 5 और 6 बजे के मध्य आरंभ हुआ। विद्रोह पहले पैदल टुकड़ी (20 एन० आई०) में आरंभ हुआ और बाद में 3 एल० सी० में फैल गया। कारमाइकेल स्मिथ अपनी जान बचाने

Scanned with CamScanner

के लिए अन्य अधिकारियों के बंगालों में शरण लेने के लिए भागता रहा। उसने विद्रोह को कुचलने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

डा० सुरेन्द्रनाथ ने विद्रोह के आरंभ का कारण 10 मई की सायंकाल की सैनिक परेड और एक खानसामा की अफवाह को माना है। उन्होंने इसकी आकस्मिकता पर अत्यधिक बल दिया है।[4] किंतु यह ठीक नहीं है। इस विद्रोह की पूर्व सूचना 9 मई को अंग्रेज अधिकारियों को थी। मेरठ में 3 एल० सी० के कमांडर लेफ्टिनेंट गफ को यह सूचना दी गई कि विद्रोह पैदल सेना द्वारा आरंभ होगा और बाद में घुड़सवार (एल० सी०) टुकड़ी उसमें सम्मिलित हो जाएगी। विद्रोह ठीक उसी क्रम से हुआ जिसकी पूर्व सूचना गफ को दी गई थी। इसके अतिरिक्त दिल्ली और मेरठ में तार संबंध 4 बजे के पूर्व ही कट चुके थे। ये दोनों घटनाएं इस बात को स्पष्ट करती हैं कि 10 मई का विद्रोह किसी योजना का ही परिणाम था। सैनिकों का तुरन्त दिल्ली के लिए प्रस्थान भी इस बात को स्पष्ट करता है कि विद्रोह आरम्भ करने के पूर्व योजना का कुछ प्रारूप तैयार हो चुका था।[5] 10 मई, 1857 ई० की घटनाएं आकस्मिक कम और सुनियोजित अधिक थीं, इसलिए इस विद्रोह के समय से पूर्व आरंभ होने की बात भी सही प्रतीत नहीं होती। कारमाइकेल स्मिथ ने अपनी अयोग्यता तथा कायरता को छिपाने के लिए अपने कार्य को अत्यन्त बुद्धिमानी का बताया था क्योंकि उसने विद्रोह को समय से पूर्व ही आरम्भ करवाकर विद्रोह कुचलवाने में सहायता की थी। यदि विद्रोह दो तीन सप्ताह पश्चात् आरंभ होना था तब सैनिकों द्वारा 10 मई की योजना के तैयार करने का प्रश्न ही नहीं उठता था। 10 मई का उपद्रव 85 घुड़सवारों के छुड़वाने के लिए आरम्भ नहीं हुआ था।

विद्रोह का प्रसार

11 मई को मेरठ के विद्रोही सैनिक दिल्ली पहुंचे और मुगल उत्तराधिकारी बहादुरशाह को भारत का सम्राट घोषित कर दिया। बहादुरशाह ने पहले इस विद्रोह का नेतृत्त्व स्वीकार करने में संकोच किया तथा उत्तर पश्चिमी (वर्तमान यू० पी०) प्रांत के उपगवर्नर को इसकी सूचना भी भिजवाई। अंग्रेजों ने बहादुरशाह को ही विद्रोह के लिए उत्तरदायी समझ लिया जबकि बहादुरशाह ने विवश होकर इसका औपचारिक नेतृत्त्व स्वीकार किया। कुछ ही दिनों में उत्तरी भारत के अधिकांश भाग में यह विद्रोह फैल गया। उत्तर पश्चिम प्रांत में विद्रोह के प्रमुख केन्द्र कानपुर, बरेली, फर्रुखाबाद, बिजनौर, मुरादाबाद, शाहजहांपुर, बदायूं, अलीगढ़, मथुरा, आगरा, मुजफ्फरनगर आदि थे। अवध राज्य के सभी क्षेत्र इस विद्रोह में सम्मिलित थे। झांसी, नागपुर तथा बिहार के अधिकांश भाग भी इस विद्रोह में सम्मिलित हो गए। अन्य क्षेत्रों में इस विद्रोह का प्रभाव सीमित तथा आंशिक रूप में पड़ा। राजस्थान में नसीराबाद की सैनिक छावनी में 28 मई को, नीमच में 3 जून को विद्रोह हुआ लेकिन विद्रोह के मुख्य केन्द्र कोटा और आवा रहे। जोधपुर में एरनपुरा में पहले विद्रोह हुआ। इसमें आवा के ठाकुर तथा मेवाड़ और मारवाड़ के कुछ जागीरदार सम्मिलित हो गए। जोधपुर के शासक द्वारा भेजी गई सेना को बड़ी सरलता से हराया जा सका। दिल्ली पर अंग्रेजों का अधिकार हो जाने से भी इस विद्रोह पर विशेष प्रभाव नहीं हुआ। कोटा में अंग्रेज विरोधी भावनाएं अधिक थीं। वहां अंग्रेज रेजिडेंट की हत्या कर दी गई और शासक को घेर लिया गया। अंग्रेजों को इस विद्रोह को कुचलने के लिए विशेष सेना भेजनी पड़ी। विद्रोहियों को बड़ी बर्बरता से समाप्त किया गया।

Scanned with CamScanner

यह संभावना थी कि पंजाब में जहां अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुए अधिक समय नहीं बीता था उपद्रव हो जाता लेकिन वहां ऐसा नहीं हुआ। विरोध के स्थान पर सतलज के पूर्वी तट के सिक्ख राज्यों ने अंग्रेजी साम्राज्य का समर्थन करना ही अधिक उचित समझा। कुछ आधुनिक इतिहासकार यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि सिक्खों में बंगाल सेना (जिसने पंजाब विजय में अंग्रेजों का साथ दिया था) से प्रतिशोध लेने की भावना थी; अथवा सिक्ख किसी भी प्रकार से दिल्ली के मुगल सम्राट का, जिसने गुरु तेग बहादुर को मरवाया था, समर्थन करने के लिए तैयार नहीं थे। इसलिए वे अंग्रेजों के समर्थक बने रहे।[6] एक अन्य तर्क यह भी दिया गया है कि पुराना सिक्ख कुलीन वर्ग अपनी पराजय से स्तब्ध था और पतन की ओर जा रहा था। पंजाब में बड़े जमींदार भी नहीं थे, 1849-57 ई० के मध्य अंग्रेज प्रशासकों ने जनता का समर्थन प्राप्त कर लिया था।[7]

ये दोनों तर्क ठीक प्रतीत नहीं होते। पंजाब में अंग्रेजी प्रशासनिक नीति से व्यापक राजनीतिक असन्तोष था। अंग्रेज विरोधी भावना कूका आंदोलन में साकार हुई। पंजाब के पुराने कुलीन सामंत नेता प्रायः मर चुके थे अथवा पंजाब के बाहर जा चुके थे। पंजाब का नया जमींदार वर्ग सुरक्षा को अराजकता में बदलने के लिए तैयार नहीं था। इसके अतिरिक्त पंजाब के इस विद्रोह में भाग न लेने का एक प्रमुख कारण पंजाबी सैनिकों की सहायता से नई सेनाओं का गठन था। तीन महीनों में 34,000 सैनिक भर्ती किए गए। इस भर्ती में पठानों और उत्तर पश्चिमी सीमा के लोगों को अधिक अवसर दिया गया। इससे जहां एक ओर अंग्रेजों को सैनिक मिल गए दूसरी ओर पंजाब में भंग किए गए सैनिकों के समक्ष अंग्रेजी सेना में भर्ती का आकर्षण पैदा हो गया। पंजाब को अंग्रेजी नियंत्रण में रखने के लिए जान लारेंस ने विद्रोह की शंका पर भी बर्बरतापूर्ण दंड देने की नीति अपनाई। कहीं-कहीं सैनिकों की पूरी रेजिमेंटों को तोप से उड़वा दिया गया। गांव के गांव जलवा दिए गए और कुछ स्थानों पर गांव के समस्त पुरुषों को कतल करवा दिया गया।[8]

अवध में क्रांति

अवध के अंग्रेजी राज्य में मिलाए जाने से सामंती परिवारों में असंतोष स्वाभाविक था। अंग्रेजों ने केवल राज्य प्रशासन पर ही अधिकार करने तक अपनी नीति सीमित नहीं रखी बल्कि उन्होंने नवाब के महलों पर, ताल्लुकेदारों की जागीरों पर अधिकार किया; और व्यापारियों, कृषकों पर नए करों का बोझ लाद दिया। शाही परिवार के कुछ सदस्यों को कई अवसरों पर आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जब अंग्रेजी राज्य में विलय के एक वर्ष के भीतर ही इतना हानिकारक प्रभाव हो सकता था तब कालांतर में अंग्रेजी राज्य के परिणाम की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस प्रकार अवध में अंग्रेजी नीति के विरुद्ध व्यापक असन्तोष था। यह असन्तोष इसलिए और अधिक बढ़ गया कि सैनिकों और सामान्य प्रजा में अलगाव नहीं था। बंगाल सेना के अधिकांश सैनिक अवध के निवासी ही होते थे।

लखनऊ में पहले 3 मई को सैनिकों का उपद्रव हुआ किंतु इसे दबा दिया गया। इसके पश्चात् 30-31 मई को विद्रोह हुआ जो शीघ्र ही अवध के विभिन्न भागों में फैल गया। 10-15 दिनों के भीतर ही ऐसा दिखाई देने लगा जैसे अंग्रेजी प्रशासन वहां कभी रहा ही न हो। लखनऊ का नवाब तो अवश्य कलकत्ता में एक राजनीतिक बंदी के रूप में रह रहा था लेकिन उसके अवयस्क पुत्र बिरजीस कद्र को नवाब घोषित कर दिया गया और प्रशासन बेगम हजरत महल द्वारा चलाया

Scanned with CamScanner

गया। अवध के विभिन्न क्षेत्रों में ताल्लुकेदारों और जमींदारों ने अपना-अपना प्रशासन स्थापित किया। अंग्रेजी सेना की चिनहट (लखनऊ से 10 मील उत्तर-पूर्व में) के स्थान पर विद्रोहियों से मुठभेड़ हुई और अंग्रेजों को बुरी तरह परास्त होना पड़ा (20 जून, 1857 ई०)। अगले दिन लखनऊ में स्थित अंग्रेज अधिकारी लखनऊ रेजिडेंसी में घिर गए और यह घेरा 8 महीनों तक चलता रहा। इस बीच कई बार अंग्रेजों ने रेजिडेंसी में घिरे हुए अधिकारियों और सैनिकों को बचाना चाहा, किंतु वे असफल रहे। जून-जुलाई में अधिकांश ताल्लुकेदारों ने अपनी-अपनी जागीरों और जमींदारी पर अधिकार कर लिया। अवध के विभिन्न ताल्लुकेदारों और जमींदारों ने अगस्त, 1857 ई० के पश्चात् ही लखनऊ विद्रोहियों का समर्थन किया था। यह संयोग की बात है कि हेवलॉक की रेजिडेंसी में घिरे अंग्रेजों की सहायता में असफलता भी अगस्त के पहले सप्ताह तक स्पष्ट हो चुकी थी। डा० मजूमदार ने तिथिक्रम पर ध्यान देकर यह तर्क प्रस्तुत किया है कि हेवलॉक की असफलता के पश्चात् ही ताल्लुकेदारों ने विद्रोह का समर्थन किया। तिथिक्रम पर आधारित होते हुए भी यह अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। डा० मजूमदार का दृष्टिकोण उस समय स्पष्ट हो जाता है जब वह यह कहते हैं कि इन ताल्लुकेदारों में से कुछ केवल अपनी 'अवैधानिक' उपलब्धियों को सुरक्षित रखने के लिए अंत तक लड़ते रहे।[9] क्या अंग्रेजों का अवध पर अतिक्रमण और अधिकार वैधानिक था ?

इस विप्लव में कुछ प्रमुख नेताओं ने भाग लिया जिनका नाम भारतीय परंपरा में अमर है। उन नेताओं के संबंध में संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत है।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई : 1853 ई० में झांसी के शासक गंगाधर राव की मृत्यु हो गई। अंग्रेजी सरकार ने उत्तराधिकारी के अभाव में 1854 ई० में झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया। झांसी की रानी की पेंशन निश्चित कर दी गई। लक्ष्मीबाई दुर्ग में रहना छोड़कर एक सामान्य विधवा की भांति महल में रहने लगी। 5 जून, 1857 ई० को झांसी की सेना ने उपद्रव कर दिया। लक्ष्मीबाई ने आरंभ में विद्रोहियों का समर्थन नहीं किया। विद्रोहियों ने अंग्रेज सेना अधिकारियों को दुर्ग में घेर लिया और 8 जून को उनकी हत्या कर दी। उसी दिन लक्ष्मीबाई के सैनिकों ने विद्रोहियों का समर्थन करना आरंभ किया। रानी लक्ष्मीबाई ने कुछ दिनों तक अंग्रेजों के प्रति मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण रखा और 12, 14 जून, 1857 ई० को सागर डिवीजन के कमिश्नर, अर्सकाइन, को अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए पत्र भी लिखे। अर्सकाइन ने लक्ष्मीबाई को अंग्रेजों की ओर से झांसी के प्रशासन संचालन का उत्तरदायित्व भी सौंपा। किंतु अंग्रेजी सरकार को झांसी में अंग्रेजों की हत्या के लिए बलि के बकरे की आवश्यकता थी इसलिए उन्होंने उन सब समाचारों को ही ठीक मान लिया जिनके अनुसार झांसी की रानी को दोषी ठहराया गया था। झांसी की स्थिति का समाचार सुनकर ओर्छा और दतिया के शासकों ने झांसी पर आक्रमण कर दिया। लक्ष्मीबाई अंग्रेजों से सहायता चाहती थी और अंग्रेज उस पर संदेह की दृष्टि रखते थे। लक्ष्मीबाई के समक्ष विकल्प था—अंग्रेजों द्वारा मृत्युदंड स्वीकार करना अथवा अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करना। उसने विवशता में फांसी के फंदे की अपेक्षा एक शहीद की भांति मरना अधिक उचित समझा। झांसी की सुरक्षा असंभव समझकर रानी लक्ष्मीबाई 4 अप्रैल, 1858 ई० को रात के अंधेरे में निकल पड़ी और बड़ी बहादुरी से लड़ती हुई कालपी पहुंची। कालपी में उस समय मध्य भारत के सब विद्रोही नेता एकत्रित थे। मई, 1858 ई० में कालपी पर भी अंग्रेजों का अधिकार स्थापित हो गया। इसके पश्चात् सभी नेताओं ने सिंधिया की सेना की सहायता से ग्वालियर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया यद्यपि ग्वालियर का राजा अंग्रेजों का भक्त था। ग्वालियर की रक्षा का प्रबंध करते हुए

Scanned with CamScanner

लक्ष्मीबाई वीरगति को प्राप्त हुई रानी लक्ष्मीबाई की वीरता पर विभिन्न लोकगाथाएं बन गई हैं। भारतीय लोक परंपरा में उनकी स्मृति अत्यन्त वीर, देशप्रेम से ओतप्रोत, साहसी सेनानी के रूप में सुरक्षित है।

कानपुर के नाना साहब : 1818 मे पेशवा बाजीवराव द्वितीय के समर्पण के पश्चात् उसे कानपुर से कुछ मील दूर बिठूर में रखा गया। 1851 ई० में बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हो गई। उस समय उसके दो गोद लिए हुए पुत्र–नाना साहब तथा बाला साहब–जीवित थे। बाजीराव को 8 लाख रुपए की वार्षिक पेंशन मिलती थी। कई अवसरों पर यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि यह पेंशन केवल बाजीराव के जीवन काल में ही मिलेगी। बाजीराव ने अपनी वसियत में नाना साहब को अपना एकमात्र उत्तराधिकारी घोषित किया। बाजीराव को मिलने वाली पेंशन को नाना साहब अपने लिए प्राप्त करने में असफल रहे।

मेरठ विद्रोह की सूचना मिलने के पश्चात् कानपुर के अंग्रेज अधिकारियों ने नाना साहब से अंग्रेजों की सहायता का अनुरोध किया और खजाने तथा बारूदघर की सुरक्षा का उत्तरदायित्व नाना साहब के सिपाहियों को सौंप दिया। 4 जून को कानपुर में विद्रोह आरंभ हो गया। 5 जून को यह विद्रोह अधिक व्यापक बन गया। 6 जून को नाना के नेतृत्व में ये सिपाही देहली जाने के बजाय वापस कानपुर आ गए। नाना के योगदान के संबंध में विभिन्न परस्पर विरोधी वर्णन उपलब्ध हैं। कुछ नाना साहब का सिपाहियों के साथ गठबंधन पहले से मानते हैं तथा एक अन्य मान्यता यह है कि नाना ने विवश होकर सिपाहियों का समर्थन किया। अंग्रेजों ने अपने छिपने और शरण लेने के लिए एक अस्थायी शिविर बना लिया। 25 जून तक इस शिविर को जीता जा सका। नाना ने 26 जून को अंग्रेजों को इलाहाबाद भेजने का आश्वासन दिया। 27 जून को जब अंग्रेज किश्तियों में बैठ चुके तब किसी आकस्मिक संकेत पर नाविकों ने किश्तियों को छोड़ दिया। अंग्रेजों ने पहले गोली चलाई और बाद में सिपाहियों ने आक्रमण कर दिया। नाना उस स्थान पर उपस्थित नहीं था। नाना साहब ने बिठूर में पेशवा का स्थान ग्रहण किया।

अंग्रेजों ने शीघ्र ही इलाहाबाद से सेना भेजी। 16 जुलाई को कानपुर पर पुनः अधिकार कर लिया गया था। इस दिन कानपुर के बीबीघर नामक मकान में कुछ अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों की हत्या कर दी गई। कानपुर पर अधिकार करने के पश्चात् अंग्रेजों ने जी खोलकर प्रतिशोध लिया। उनके भय से कानपुर की साधारण जनता घर छोड़कर भाग रही थी। अंग्रेज सैनिक प्रत्येक भारतीय को नाना का समर्थक समझकर उसे मार रहे थे। अंग्रेज सेनाधिकारी नील ने आदेश दिया था कि प्रत्येक व्यक्ति से कोड़े मार मारकर बीबीघर में लगे खून के दाग साफ कराकर उसे मृत्यु दंड दे दिया जाए। दीवानी के एक मुसलमान अधिकारी को फर्श का खून जीभ से साफ करने का आदेश दिया गया। नील ने ब्राह्मणों को जमीन में गड़वा दिया और मुसलमानों को जलवा दिया।[10]

नील के व्यापक नरसंहार के संबंध में टाइम्स के संवाददाता रसल ने लिखा है कि नील की सैनिक टुकड़ी के एक सहायक अधिकारी ने उसकी व्यापक रक्तपात की नीति का प्रतिरोध यह कहकर किया कि यदि उसने प्रदेश को निर्जन उजाड़ बना दिया तो उसकी सेना के लिए खाद्य सामग्री उपलब्ध नहीं हो सकेगी।[11]

बिठूर पर अंग्रेजों ने दो बार आक्रमण किया। 19 जुलाई, 1857 ई० को पहली बार बिठूर पर निर्विरोध अधिकार कर लिया गया। नाना के महल आदि को आग लगा दी गई। एक अंग्रेज अधिकारी ने एक सोने की जंजीर, चांदी की प्लेट उठा ली। उसके एक [illegible] अंग्रेजों ने कुर्सी का जोड़ा, दूसरे ने एक पालूत बंदर (जो बाद में लंदन के जू में रखा [illegible] संपत्ति

Scanned with CamScanner

तो सब सैनिकों के ही हाथ लगी। कुछ अधिकारियों को यह संदेह हुआ कि धन दीवारों में गड़ा हुआ था इसलिए एक महीने पश्चात् महल की एक-एक ईंट उखाड़ दी गई। एक अधिकारी ने बिटूर महल के निकट कुएं को खाली कराकर उसमें से पुराने सोने-चांदी की वस्तुएं उपलब्ध कीं। सोने का एक भारी कलश जिसका वजन 41 पौंड था उपलब्ध हुआ। 3 जनवरी, 1858 ई० को एक अंग्रेज अधिकारी ने लिखा कि सिपाहियों को इतना अधिक सोना-चांदी कुएं से मिला कि वे ले जा नहीं सकते थे।[12] नाना का अता-पता जनवरी, 1858 ई० के पश्चात् अनिश्चित-सा हो गया था। बाद में नाना नेपाल चले गए और उनके अंत के संबंध में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

कुंवर सिंह : जगदीशपुर (शाहबाद, बिहार) के जमींदार कुंवर सिंह की 1857 ई० में आयु 70 वर्ष थी। उसकी जमींदारी काफी बड़ी थी लेकिन उसकी आर्थिक स्थिति खराब थी। वह अंग्रेज अधिकारियों के सहयोग से अपनी जमींदारी का प्रबंध बोर्ड आफ रेवेन्यू को सौंपना चाहता था। लेकिन यह प्रस्ताव अंततः स्वीकृत नहीं हुआ। इससे कुंवर सिंह दिवालियेपन की स्थिति में पहुंच गया। बिहार में सबसे पहले सैनिक विद्रोह दानापुर में हुआ। विद्रोहियों ने आरा पहुंचकर कुंवर सिंह को भी उसके गांव से बुलवा भेजा और अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष संचालन का उत्तरदायित्व उसे सौंप दिया। यह घटना जुलाई, 1857 ई० के अंतिम सप्ताह की थी। शाहबाद जिले में विद्रोहियों ने नीलाहों की संपत्ति को सबसे अधिक नुकसान पहुंचाया। यह उस जातीय भेद तथा शोषण की नीति का परिणाम था जो अंग्रेज प्रशासकों के संरक्षण में नीलाहों ने अपनाई थी। अगस्त, 1857 ई० में कुंवर सिंह आरा से लखनऊ की दिशा में चल दिया, नवंबर में वह कालपी पहुंचा लेकिन कानपुर पर आक्रमण करने में उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। बाद में वह आजमगढ़ की ओर चल दिया और मार्च, 1858 ई० में उस स्थान पर अधिकार कर लिया। यह उसकी सबसे बड़ी सफलता थी लेकिन उसमें युद्ध कुशलता की अपेक्षा व्यूह कौशल कम था। अंग्रेजों ने आजमगढ़ पर आक्रमण किया। दो ओर से सेनाओं को भेजकर कुंवर सिंह को घेर लिया गया। स्थिति को अनुकूल न देखकर वह शाहबाद वापस पहुंच गया। इस अभियान में उसने अपना समस्त रण-कौशल दिखाया। समस्त क्षेत्र में अंग्रेजों के विरुद्ध प्रायः एक वर्ष तक संघर्ष चलता रहा। अंग्रेज इस सफल विद्रोह से इतने खीझ उठे थे कि मेजर आयर ने जगदीशपुर के महल और मंदिरों को नष्ट करके ही अपने दिल की भड़ास निकाली।

अंग्रेजों द्वारा विद्रोह कुचला जाना

आरंभ में अंग्रेज सैनिक अथवा असैनिक अधिकारी इस विद्रोह के स्वरूप की कल्पना भी नहीं कर सके। मेरठ में विद्रोह के बाद अंग्रेजी सेना दो दिन तक निष्क्रिय रही। मई, 1857 ई० में कलकत्ता में जीवन सामान्य रहा। कैनिंग तथा सेनाध्यक्ष जार्ज एनसन दोनों ने ही विद्रोह को बहुत कम महत्त्व दिया। सेनाध्यक्ष एनसन को युद्ध का बहुत कम अनुभव था। जान लारेंस द्वारा दिल्ली पर तुरंत आक्रमण का सुझाव मिलने पर भी एनसन ने इसे स्वीकार नहीं किया। लेकिन शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद ही दिल्ली पर आक्रमण की तैयारी की गई। दिल्ली के भारतीय सैनिकों में कुशल युद्ध संचालकों का अभाव था। उन्होंने अपना ध्यान अंग्रेजों को दिल्ली रिज (लंबा पहाड़ी टीला) से हटाने पर केंद्रित किया। वे पंजाब से पहुंचने वाली सहायता को रोकने में असमर्थ रहे। इस बीच यद्यपि भारतीय सैनिकों की संख्या में वृद्धि होती रही फिर भी वे अपनी

Scanned with CamScanner

सैनिक शक्ति को अधिक नहीं बढ़ा सके। अगस्त, सितम्बर में पंजाब से बड़ी तोपें दिल्ली प गई और 14-20 सितंबर के मध्य दिल्ली के विभिन्न स्थानों पर अधिकार कर लिया गया। सितंबर को बहादुरशाह, उसकी बेगम जीनत महल और उसके पुत्र को बंदी बना लिया गय इसके बाद अंग्रेजों ने दिल्ली में बेगुनाहों के कत्ल से खून की नदियां बहा दीं। सामान्यतः भारतीय सिपाहियों द्वारा की गई अंग्रेजों की हत्या का वर्णन अंग्रेज इतिहासकारों अथवा लेखकों लिखा हुआ मिलता है लेकिन अंग्रेजों द्वारा किए गए अत्याचार का वर्णन कम उपलब्ध होता न तो विद्रोही नेताओं का वर्णन लिखित था और न ही कोई उनमें जीवित बचा जो बाद में संस्मरण लिख सकता। अंग्रेजों और विद्रोही सिपाहियों द्वारा की गई हत्याओं में केवल अंतर इ था कि विद्रोही सैनिकों ने अंग्रेजों को प्रशासक वर्ग का प्रतिनिधि समझकर मारा था। वे हत्‍ प्रतिशोध की पहली घड़ी में ही हुई थीं तथा अधिकांश अवसरों पर ये हत्याएं नेताओं के ओ के अभाव में हुई। इसके विपरीत अंग्रेजों द्वारा रक्तपात अधिकारियों की अनुमति से तथा नि प्रतिशोध की भावना से किया गया। अंग्रेजों ने केवल सैनिकों का ही नहीं अपितु साधारण नागरिक का भी रक्तपात किया। यह रक्तपात युद्ध अथवा संघर्ष के समय नहीं हुआ (जैसा विद्रोही सैनिक ने किया था) बल्कि भारतीय जनसंख्या को एक पाठ पढ़ाने के लिए विद्रोह समाप्ति के पश किया गया।

दिल्ली विजय में पंजाब के सिक्ख तथा अन्य सैनिकों का योगदान अधिक था। ऐसा जाता है कि अंग्रेजों ने गुरु तेगबहादुर की सिक्खों द्वारा दिल्ली के मुगल सम्राट से प्रतिशोध की भविष्यवाणी की अफवाह फैलाई थी।[13] दिल्ली की विजय के पूर्व ही प्राइज एजेंट (लुंठित नौसामग्री के निर्णायक दलाल) नियुक्त कर दिए गए थे। एक अंग्रेज अधिकारी का सुझा कि दिल्ली को कार्थेज की भांति नष्ट करके केवल एक गिरजाघर को ही छोड़ दिया ज स्वीकृत नहीं हुआ। दिल्ली की लूट और विनाश की कल्पना संभवतः इस बात से हो सकती कि नादिरशाह की लूट और कत्लेआम उसके सामने फीकी है। 21 सितंबर से नवंबर के तक यह कार्यक्रम चलता रहा। अंग्रेज सिपाहियों ने प्रत्येक भारतीय को जो सामने आया मा आरंभ किया, बाद में वे अन्य भारतीय सैनिकों के साथ लूट में सम्मिलित हो गए। लूट का अनु शायद इस बात से हो सके कि चार्ल्स ग्रिफिथ्स दिल्ली की जीत के समय एक अंग्रेज अधिव था। उसने दिल्ली के घेरे का वर्णन करते हुए लिखा है कि अंग्रेज अधिकारियों को दो लाख लूट की सामान्य छूट थी। बाद में ग्रिफिथ्स के अधीन अंग्रेज सिपाहियों ने सैनिक सेवा से मु पाने के लिए धन दिया। इंग्लैंड के विभिन्न नगरों में भारतीय हीरे-जवाहरात बिक्री के लिए प्रद मंजूषा में रखे रहते थे।[14] मिर्जा गालिब और जहीर देहलवी, नजीर अहमद आदि के लेखों में बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध हैं।

जुलाई, 1857 ई० में कानपुर पर अंग्रेजों का अधिकार हो चुका था यद्यपि तात्या टोपे विद्रोहियों से अंग्रेजों की कई बार मुठभेड़ हुई। लखनऊ और पूर्वी अवध में व्यापक अशांति अव्यवस्था फैल गई इसलिए अंग्रेजों ने नेपाल के प्रधानमंत्री के सहायता के प्रस्ताव को स्वी किया। मार्च, 1858 ई० तक अंग्रेजों का लखनऊ पर अधिकार हो गया। अंग्रेजों को रुहेलख बुंदेलखण्ड और मध्य भारत में अपना नियंत्रण स्थापित करने में विभिन्न कठिनाइयों का साम करना पड़ा, लेकिन जून, 1858 ई० तक अधिकांश क्षेत्रों पर अंग्रेज सफल हो चुके थे।

इलाहाबाद और बनारस के क्षेत्रों में जून, 1858 ई० में मार्शल ला जारी कर दिया और बि मुकदमा चलाए लोगों को मृत्युदंड दिया जाने लगा। इतिहासकार 'जान के' ने लिखा है कि

Scanned with CamScanner

महीनों तक आठ गाड़ियां सुबह से शाम तक शवों को चौराहों और बाजारों से हटाकर ले जाने में व्यस्त रहीं। गांव के गांव जला दिए गए। वहां के निवासियों को बचकर भागने नहीं दिया जाता था। अंग्रेजों द्वारा विद्रोहियों की निर्मम हत्या से भारत में एक आतंक-सा स्थापित हुआ। वे भारतवासियों को यह पाठ पढ़ाना चाहते थे कि अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करना सरल नहीं था। ये अत्याचार अशिक्षित तथा असभ्य व्यक्तियों द्वारा नहीं बल्कि उन प्रशासकों द्वारा किए गए जो अपने आपको सभ्य तथा प्रगतिशील और शिक्षित कहते थे। ये उदाहरण उस प्रशासन की नैतिक दुर्बलता और अमानवीयता के ज्वलंत उदाहरण हैं।

1857 के विप्लव का स्वरूप

समकालीन अंग्रेज लेखकों और प्रशासकों से लेकर आज तक यह विवाद का विषय बना हुआ है कि 1857 ई० के विप्लव का स्वरूप क्या था। 1857-58 ई० में भी कुछ अंग्रेज लेखकों की यह मान्यता थी कि यह विप्लव जनसाधारण द्वारा असंतोष अभिव्यक्ति का एक उदाहरण था किन्तु अधिकांश अंग्रेज लेखक इसे एक सैनिक विद्रोह मात्र ही मानते थे। ईसाई मिशनरी तथा इवेंजेलिकल विचारधारा से प्रभावित लेखक इस विद्रोह को ईश्वर द्वारा भेजी गई विपत्ति समझते थे क्योंकि कंपनी प्रशासन ने भारतीय प्रजा को ईसाई नहीं बनाया। 19वीं सदी के अंतिम वर्षों में अंग्रेज लेखक साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से अधिक मात्रा में प्रभावित थे इसलिए वे 1857 ई० को केवल एक सैनिक विद्रोह मात्र कहते थे। विभिन्न पुस्तकों में अंग्रेजों की कठिन एवं विषम परिस्थितियों की, अंग्रेजों के साहस, सैनिक कौशल की अधिक चर्चा होती थी साथ ही अंग्रेजों की जातीय सर्वोच्चता, उनके धैर्य और व्यक्तिगत उपक्रम तथा उद्यम की महानता को स्पष्ट किया जाता था। अंग्रेजी साम्राज्य के शक्तिशाली प्रभाव में भारतीय लेखक भी उसी दृष्टिकोण को स्वीकार कर लेते थे। इस विचार के विपरीत पहली बार 1909 ई० में विनायक दामोदर सावरकर ने 1857 ई० के विप्लव को 'भारत की स्वतंत्रता का युद्ध' कहा और इस शीर्षक से एक ग्रंथ भी लिखा। यह ग्रंथ भारत में स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों को प्रेरणा देने में कुछ सीमा तक सहायक हुआ।

1957 ई० में स्वतंत्र भारत ने 1857 ई० की क्रान्ति की पहली शताब्दी मनाई। इस अवसर पर सरकार की ओर से तथा अन्य शोधकर्त्ताओं और लेखकों ने इस विप्लव पर पुनः विचार-विमर्श किया। सुरेन्द्रनाथ सेन ने अपनी पुस्तक '1857' में वाद-विवाद से बचने का पूरा प्रयत्न किया। न केवल शीर्षक ही इस बात का द्योतक है बल्कि विभिन्न स्थानों पर वह विभिन्न बातों का समर्थन करते हैं। 'आंदोलन एक सैनिक विद्रोह की भांति आरंभ हुआ लेकिन केवल सेना तक सीमित नहीं रहा। सेना ने भी पूरी तरह विद्रोह में भाग नहीं लिया।'[15] 'साथ ही इस उपद्रव को केवल सैनिक उपद्रव कहना गलत होगा।' 1857 ई० में विद्रोह अवश्यंभावी नहीं था लेकिन साम्राज्य के संविधान में यह निहित था।[16] आर० सी० मजूमदार ने 'दी सिपोए म्यूटनी ऐंड दि रिवोल्ट आफ 1857' में इस विप्लव को सैनिकों का एक विद्रोह बताया यद्यपि कुछ क्षेत्रों में जनसाधारण ने इसका समर्थन किया।[17] प्रो० शशीभूषण चौधरी ने 'सिविल रिबेलियन इन दि इंडियन म्यूटनी' लिखी। इसमें उन्होंने 1857 ई० के विप्लव को सामान्य जनता का विद्रोह बताया।[18] यह विप्लव केवल एक सामंतीय विद्रोह नहीं था। जमींदारों और ताल्लुकेदारों ने केवल सामंतीय पद्धति के आधार पर संघर्ष में भाग नहीं लिया। उनके समर्थक उनके अधीन रहने वाली

Scanned with CamScanner

कृषक प्रजा मात्र ही नहीं थी बल्कि उस क्षेत्र की समस्त जनता उनका समर्थन कर रही थी।[19] आर्थिक तत्त्वों को प्रमुख बताने के लिए '1857 ई० एक संगोष्ठी' पूरनचंद्र जोशी द्वारा संपादित-प्रकाशित हुई लेकिन ये सब विद्वान किसी एक मत पर सहमत नहीं हो सके हैं और विवाद उसी प्रकार हैं। शशीभूषण चौधरी की पुस्तक का प्रति उत्तर डा० मजूमदार ने 'ब्रिटिश पैरामाउंटसी ऐंड इंडियन रेनेसां' में दिया और डा० मजूमदार का प्रभावशाली उत्तर प्रो० चौधरी ने अपनी पुस्तक 'थियोरीज आफ दि इंडियन म्यूटनी' में दिया।

यह तथ्य तो अब सर्वमान्य है कि 1857 ई० का विप्लव केवल एक सैनिक विद्रोह नहीं था लेकिन इससे अधिक वह क्या था, इस पर भारी मतभेद है। डा० ताराचंद ने यह मत प्रतिपादित किया है कि यह विप्लव मध्ययुगीन विशिष्ट किंतु अशक्त वर्गों का अपनी खोई हुई सत्ता को प्राप्त करने का अंतिम प्रयास था। ये वर्ग अंग्रेजी नियंत्रण से मुक्ति चाहते थे क्योंकि अंग्रेजी प्रशासकीय नीतियों से इन विशिष्ट वर्गों के हितों को हानि पहुंचती थी।[20] पूरनचंद जोशी इसे राष्ट्रीय और सामान्य जनता तक फैला हुआ विप्लव मानते हैं।[21] बेंजेमिन डिज्रेली ने इंग्लैंड की संसद में इस विद्रोह को एक राष्ट्रीय विद्रोह कहा था। डा० के० एल० श्रीवास्तव के अनुसार 1857 ई० के विप्लव में कृषकों के संघर्ष सामाजिक संघर्ष और स्वतंत्रता संग्राम के तत्त्व मिले हुए थे।[22] पामर इस विवाद को तय करने के लिए यह प्रश्न उठाते हैं कि एक विद्रोह को कितना व्यापक होना चाहिए कि वह सामान्य विप्लव कहा जा सके? उनके अनुसार केवल कुछ सैनिकों अथवा एक टुकड़ी के विद्रोह (नियम उल्लंघन) को ही सैनिक विद्रोह कहा जा सकता है। पूरी सेना के सामान्य विद्रोह को सैनिक विद्रोह नहीं कहा जा सकता। विशेषकर उस स्थिति में जब सैनिकों और सामान्य नागरिकों में उतना घनिष्ठ संबंध हो जितना बंगाल सेना के सैनिकों में और अवध तथा बिहार और उत्तर-पश्चिमी प्रांत के नागरिकों में था।[23] बंगाल सेना के सैनिकों में एकता केवल सैनिक अनुशासन पर ही आधारित नहीं थी बल्कि व्यवसाय, आर्थिक स्थिति और क्षेत्रीय आधार पर भी थी। विश्व में अन्य (फ्रांस और रूस) व्यापक क्रांतियां भी एक जन-समुदाय द्वारा ही आरंभ हुई हैं। इन सब उदाहरणों में सम्मिलित असंतोष के साथ-साथ सत्ताधारी वर्ग की नियत पर संदेह ने उस जन-समुदाय को संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

विद्रोह के स्वरूप पर एक अन्य विवाद इस प्रश्न को लेकर पैदा हुआ है कि साधारण जनता ने इस विद्रोह में भाग किस समय लिया? सैनिक विद्रोह से पहले अथवा बाद में ? डा० मजूमदार का विचार है कि जनता का विद्रोह उस समय हुआ जब अंग्रेजी प्रशासन सैनिक विद्रोह के फलस्वरूप समाप्त हो चुका था।[24] डा० चौधरी के अनुसार विभिन्न स्थानों पर जनता ने पहले विद्रोह किया और बाद में सेना ने।[25] अंग्रेजी सत्ता का भारत के विभिन्न भागों से समाप्त किया जाना सैनिक विद्रोह पर कम और साधारण जनता के विद्रोह पर अधिक निर्भर करता था। इस आधार पर वे इसे केवल सैनिक विद्रोह नहीं मानते हैं। उन्होंने कुछ समकालीन ग्रंथों के आधार पर यह बताया है कि अंग्रेजों ने स्वयं इसे एक सामान्य जनता का विद्रोह बताया था।

डा० मजूमदार ने विद्रोह के स्वरूप निर्धारण में बहादुरशाह, लक्ष्मीबाई, नानासाहब, कुंवरसिंह आदि नेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थों को अधिक निर्णायक बताया है।[26] यदि यह मान लिया जाए कि 1857 ई० की घटनाएं इन नेताओं के प्रयत्नों द्वारा आरंभ हुई तब इन नेताओं के उद्देश्यों को 1857 ई० के स्वरूप के लिए निर्धारक मानना चाहिए। यदि इन नेताओं ने अनिच्छा और विवशता से 1857 ई० की क्रांति में भाग लिया हो जैसा वास्तव में था और यदि क्रांति इन नेताओं के विद्रोह के पूर्व ही आरंभ हो गई हो तब केवल इन चार प्रमुख नेताओं के स्वार्थों को इस क्रांति

Scanned with CamScanner

के कारण अथवा स्वरूप निर्धारण में प्रमुख नहीं माना जा सकता। डा० चौधरी का यह कथन सही है कि अधिक प्रसिद्ध नेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थों का '1857' ई० के आरंभ होने में कोई योगदान नहीं था।[27] इन चार नेताओं के व्यक्तिगत स्वार्थों और हितों पर 1857 ई० के स्वरूप का निर्धारण ऐतिहासिक तथ्यों की अनदेखी करना है।[28]

1857 ई० के विद्रोह का सही स्वरूप समझने में हमें विश्व की अन्य क्रांतियों के संबंध में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें समझ लेनी चाहिए। किसी भी क्रांति का स्वरूप केवल उस क्रांति के आरंभ करने वालों के लक्ष्यों द्वारा निर्धारित नहीं होता। निर्धारक तथ्य यह है कि राष्ट्रीय स्मृति में उस क्रांति की क्या छाप रह जाती है अथवा वह आने वाली घटनाओं को किस प्रकार प्रभावित करती है? उदाहरणार्थ : मेग्नाकार्टा वास्तव में सामंतों द्वारा अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए प्राप्त किया गया अधिकार मात्र था लेकिन इंग्लैंड में इतिहासकारों तथा राजनीतिज्ञों ने इसे अंग्रेजी स्वतन्त्रता की आधारशिला, संविधान की बाइबिल आदि माना है। कालांतर में इस मेग्नाकार्टा का महत्त्व उन बातों में नहीं था जो उसमें लिखी हुई थीं बल्कि उन अर्थों में था जिनको आदर्श बताकर उसमें ढूंढ़ा गया और जो आने वाली पीढ़ियों को प्रभावित करती रही। इसी प्रकार 1688 ई० की रक्तहीन क्रांति को गौरवपूर्ण कहा जाता है। वास्तव में उस क्रांति में कोई भी कार्य गौरवपूर्ण नहीं था। एक बाह्य राजकुमार तथा सेना की सहायता से इंग्लैंड के निवासियों ने अपने उन अधिकारों को प्राप्त किया था जिन्हें उन्होंने स्वयं आपसी फूट से खोया था। इंग्लैंड में इस क्रांति से प्रजातंत्र की स्थापना अथवा संवैधानिक विकास की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई। लेकिन इंग्लैंड के इतिहास में इस क्रांति को गौरवपूर्ण कहते हैं। 1789 ई० की फ्रांसीसी क्रांति का आरम्भ सामंतीय वर्ग द्वारा राजा की निरंकुशता पर नियंत्रण लगाने के फलस्वरूप हुआ। लेकिन इतिहास में फ्रांस की क्रांति को राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र का जनक मानते हैं।

1857 ई० के विद्रोह का मूल्यांकन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि विद्रोह में भाग लेने वाले नेताओं का अंग्रेजों के प्रति क्या दृष्टिकोण था? निस्संदेह वे अंग्रेजों को 'काफिर' 'फिरंगी' कहते थे और उन्हें भारत से निकालना चाहते थे। विभिन्न घोषणाओं में अंग्रेज विरोधी भावनाएं स्पष्ट थीं। इस विद्रोह का लक्ष्य विभिन्न नेताओं के भाषणों के आधार पर ही निर्धारित किया जा सकता है और यह लक्ष्य अंग्रेजों को भारत से निकालना था। इससे बढ़कर स्वतंत्रता संघर्ष के लिए और कोई लक्ष्य नहीं हो सकता। डा० ताराचंद भी यह स्वीकार करते हैं कि विद्रोहियों को संगठित करने वाला एकमात्र तत्त्व विदेशी शासन को समाप्त करने की भावना थी।[29] इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए ही संघर्ष हुआ और इसी की सुरक्षा के लिए यह संघर्ष 1857 ई० के अंत तक चलता रहा।[30] डा० मजूमदार का यह कथन सही नहीं है कि सामान्य जनता का अंग्रेजों के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिपूर्ण था।[31] यदि कुछ अंग्रेज लेखकों ने जनता की सहानुभूति का वर्णन किया है तो बहुत अधिक लेखकों ने जनता द्वारा कष्ट दिए जाने की बात भी लिखी है। अंग्रेज अधिकारियों का सामान्य निहत्थी जनता के प्रति निर्मम एवं कठोर व्यवहार उनके प्रतिशोध का सूचक था। डा० सेन ने एक स्थान पर ठीक ही लिखा है कि जो संघर्ष धर्म सुरक्षा के लिए आरंभ हुआ उसका अंत स्वतंत्रता संघर्ज के रूप में हुआ। इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं कि विद्रोह के नेता अंग्रेजी प्रशासन को समाप्त करके मुगल सम्राट और पुरानी व्यवस्था को पुन: स्थापित करना चाहते थे।[32]

अंग्रेज विरोधी भावनाएं केवल अंग्रेजों के विरुद्ध ही व्यक्त नहीं की गई बल्कि अंग्रेज समर्थक भारतीय व्यापारी तथा अधिकारी वर्ग (विशेषकर बनिया वर्ग) के विरुद्ध भी थीं। जमींदारों और

Scanned with CamScanner

कृषकों की आर्थिक कठिनाइयों का लाभ उठाकर बनियों ने अंग्रेजी न्यायालयों की ... भूमि पर अधिकार कर लिया था इसलिए अवध और अन्य क्षेत्रों में कृषकों और पु... जमी... ने बनियों और नए भूस्वामियों के विरुद्ध विद्रोह किया।

कुछ लोगों ने 1857 ई० के विद्रोह के स्वरूप तथा महत्त्व को यह कहकर घ... का प्रय... किया है कि यह बहुत कम क्षेत्र में फैला हुआ था। वास्तविकता यह है कि इस... मुख्य कें... आधुनिक उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा और मध्य प्रदेश के कुछ भाग थे किंतु भारत के अन्... भागों में भी इसका प्रभाव रहा है। बंगाल और दक्षिणी भारत के कुछ भाग को छोड़... शेष भार... में प्रमुख स्थानों पर विद्रोह हुए। इतने व्यापक क्षेत्र में इससे पहले कभी इतना ... क विद्रो... नहीं हुआ था। यदि यह विद्रोह अधिक व्यापक नहीं हो सका तो भारत की भौगोि... विशाल... तथा यातायात की दुर्गमता इसके लिए उत्तरदायी थी।

1857-58 ई० के विप्लव की असफलता से यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेजों के ... सैनि... विद्रोह व्यर्थ था किंतु भारतीय परंपरा में 1857 ई० की क्रांति और इसके प्रसिद्ध नेता अंग्रेजों ... विरुद्ध स्वतंत्रता संघर्ष के प्रतीक बनकर रहे। यह संघर्ष भावी पीढ़ियों को भार... की स्वतंत्र... की ओर प्रेरित करता रहा। सामंतीय तत्त्वों का नेतृत्व अवश्य उपलब्ध रहा लेकि... उस सम... 'सामंतीय भक्ति और निष्ठा ही देशभक्ति की पर्यायवाची थी।'[33] किसी भी आंदोलन ... लोकप्रियता का अनुमान लगाते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी विद्रोह में ए... अल्पसंख्यक वर्ग ही दृढ़ संकल्प वाला होता है और किसी भी समय में किसी भी देश में ए... क्रांति का शत-प्रतिशत समर्थन नहीं होता।[34]

1857 की असफलता के कारण

1857 ई० के विप्लव की असफलता पूर्व निश्चित थी। इस असफलता के लिए ...ख्य कार... निम्नलिखित थे :

योग्य नेतृत्व का अभाव : विद्रोह के नेताओं में सैनिक कुशलता तथा संगठि... कर का... करने का अभाव था। नाना साहब, लक्ष्मीबाई, कुंवर सिंह, बहादुरशाह मिलकर ... नहीं ... सके। इनमें से किसी भी नेता में कुशल सैन्य संचालन के गुणों का अभाव था। य... दिल्ली... कानपुर, झांसी, ग्वालियर के अभियानों से स्पष्ट हो जाता है। दिल्ली में अंग्रेजो... बाहर से... सैनिक सहायता उपलब्ध हो जाने देना सैनिक अदूरदर्शिता का प्रतीक था। व्यक्ति... साहस ... युद्ध में सफलता दिलवाने के लिए पर्याप्त नहीं होता। विद्रोह आरंभ करने वाले सैनि... प्रशिक्षि... अंग्रेजी सेना के अंग थे। अंग्रेजी सेना में वे सफलता से लड़े थे लेकिन अं...जों के वि... सैनिक योग्यता का भली-भांति प्रयोग नहीं किया जा सका। अंग्रेजी विजयी सेना में उनसे अधि... प्रशिक्षित सैनिक कम ही थे लेकिन भारतीय सैनिकों की सबसे बड़ी कमी कुशल नेतृत्व ... अभाव थी।

साधनों की अपेक्षाकृत कमी : भारतीय सैनिकों तथा नेताओं के पास अंग्रेजी सेना त... शासकों की तुलना में साधन बहुत कम थे। अंग्रेजी सरकार की सहायता के लिए अधिकां... भारतीय नरेश, पंजाब, बंगाल और मद्रास, बम्बई प्रांतों का अधिकांश राजस्व उपलब्ध था। सैन्य सामग्री इंग्लैंड के उद्योगों से पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो सकती थी। भारतीय ...ओं के आर्थिक और सैनिक साधन बहुत सीमित थे यद्यपि उनके पास जनसंख्या अधिक थी। बहुत

Scanned with CamScanner

अवसरों पर भारतीय सैनिकों के पास सामान्य शस्त्र भी नहीं होते थे, अधिक विकसित शस्त्रों के समक्ष मानव शक्ति अधिक समय तक नहीं टिक सकी। इन नेताओं की आर्थिक कठिनाइयां भी सामान्य ही थीं।

इन साधनों में अंग्रेज सरकार के पास तार और रेल की सुविधा थी। मेरठ से देहली और आगरा तक तार के माध्यम से सीधा संबंध था। देहली से तार संपर्क तो विद्रोहियों ने काट दिया था लेकिन आगरे के तार काटने में थोड़ा विलंब हुआ और मेरठ के सैनिक विद्रोह की सूचना आगरे 10 मई, 1857 ई० की रात को पहुंच गई। विद्रोहियों के पास ऐसे कोई साधन नहीं थे। एक विद्रोही नेता ने तार को विद्रोह की फांसी की रस्सी ठहराया था।

केंद्रीय संगठन का अभाव : यद्यपि विद्रोह के पूर्व कुछ संगठन अथवा योजना अवश्य रही थी लेकिन इस योजना का क्रमबद्ध रूप नहीं था न ही कोई केंद्रीय संस्था अथवा संगठन इसके संचालन के लिए उत्तरदायी था। सेनाओं के दिल्ली पहुंचने तक तो किसी योजना का रूप दिखाई पड़ता है लेकिन बाद में यह समाप्त-सा दिखाई पड़ता है। इस योजना, संगठन अथवा नेतृत्व के अभाव को कुछ आलोचकों ने विद्रोह में राष्ट्रीयता के तत्त्व का अभाव मान लिया है लेकिन यह गलत है। विद्रोहियों के उत्साह अथवा प्रेरणा में कोई कमी नहीं थी उनके लिए सामंतीय नेतृत्व ही पर्याप्त था। राष्ट्रीयता का उस समय कोई प्रश्न नहीं था। दुर्भाग्य की बात यह थी कि विभिन्न सामंती नेता आपस में सहमत नहीं हो सके। सैनिक अभियान की सफलता की दृष्टि से भले ही यह कहा जा सके कि एक-एक क्षेत्र तक कार्य सीमित रखना सफलता में सहायक था किंतु कोई नेता ऐसा भी होना चाहिए था जो अंग्रेजों की गतिविधियों को ध्यान में रखकर सब क्षेत्रों के कार्यों के संचालन को समन्वित कर सकता। उदाहरणार्थ: झांसी और बुंदेलखंड में विद्रोह का उस समय आरंभ हुआ जबकि दिल्ली और कानपुर पर अंग्रेजी सफलता स्थापित हो चुकी थी। संभवत: 1857 ई० के नेताओं में इस प्रकार का दृष्टिकोण विकसित होना संभव नहीं था। इसके लिए पहले से योजना और संगठन की आवश्यकता थी इसीलिए यह कहा जा सकता है कि 1857 ई० के विद्रोह आरंभ करने के पीछे भले ही कुछ योजना अथवा संगठन रहा हो लेकिन इसका संचालन (मई, 1857 ई० से मई, 1858 ई० तक) किसी योजना के अधीन नहीं था।

ठोस लक्ष्य का अभाव : अधिकांश विद्रोही नेताओं ने विद्रोह में अनिच्छा से भाग लिया था। बहादुरशाह, कुंवरसिंह, नाना साहब, रानी लक्ष्मीबाई आदि नेता परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको ढालते चले गए। इनमें से किसी ने भी इस विद्रोह की योजना नहीं बनाई थी। सैनिकों अथवा सामान्य जनता के विद्रोह आरंभ कर देने के पश्चात् भी कुछ समय तक नेता अंग्रेजों से अपने निजी लाभ और स्वार्थों की उचित व्यवस्था चाहते थे। निराशा मिलने पर ही उन्होंने विद्रोहियों का समर्थन किया। ऐसी स्थिति में इस विद्रोह के समक्ष साकार लक्ष्यों का अभाव था। इन नेताओं के निजी पत्रों और वक्तव्यों को देखकर ही यह सहज धारणा बन जाती है कि 1857 ई० के विप्लव के पीछे उनकी कोई योजना नहीं थी। ऐसे व्यापक आन्दोलन अथवा विप्लव का आरंभ बिना योजना के संभव ही नहीं था। इसके संयोजक कौन लोग थे, इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता क्योंकि विद्रोहियों और उनके समर्थकों का विनाश पूरी तरह किया गया। विद्रोह में भाग लेने वालों का दृष्टिकोण व्यक्तिनिष्ठ था। अंग्रेजी शासन को समाप्त करने का भ्रांतिपूर्ण अर्थ उन्होंने अंग्रेज अधिकारियों को समाप्त कर देना ही समझा। वे यह नहीं समझते थे कि कुछ अंग्रेजों को समाप्त कर देने से ही अंग्रेजी सत्ता समाप्त नहीं हो सकती थी। इस तथ्य को न समझ सकना भी उनकी असफलता के लिए उत्तरदायी रहा।

Scanned with CamScanner